National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 02-01-2021; Accepted: 22-01-2021; Published: 23-02-2021
www.nationaljournals.com
Volume 6; Issue 1; 2021; Page No. 17-19

त्रिशूल उपन्यास में अभिव्यक्त साम्प्रदायिकता का दंश

संदीप त्रिपाठी

पीएच.डी. (हिंदी), शोधार्थी, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखंड, भारत

शारांश

हमारे देश में धर्म की जड़े बहुत गहरी है। जिसने लोगों को अपने मायारूपी जाल में कुछ इस तरह जकड़ कर रखा है कि, वह जितना उस दलदल से बाहर निकलने की कोशिश करते है, उतना अधिक उसमे फंसते चले जाते है। भारत एक धर्म निरपेक्ष देश है जहाँ सब जाति,धर्म आदि के लोगों को समान रूप से जीने का अधिकार है। हालांकि भारतीय संविधान लागू होने के बावजूद भारत के जाति और धर्म निरपेक्ष राज्य बन गया,पर साम्प्रदायिकता की समस्या आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। लेकिन हमारे समाज में कुछ असमाजिक तत्वों और अराजकतावादियों ने धर्म को अपने स्वार्थ के लिए एक हथियार के रूप में प्रयोग किया है। जिसका परिणाम लोगों को सदैव अपनी जान से चुकाना पड़ता है। इतने घातक परिणाम होने के पश्चात भी सम्पूर्ण मानव जाति का झुकाव धर्म की और बढ़ता ही गया है। जबकि मानव सभ्यता की शुरुआत से ही भारतीय संस्कृति की परम्परा "अयं निज: परो वेति गणना लघुचेतसाम् । उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुंबकम् ॥" अर्थात 'यह मेरा है अथवा पराया है ऐसा केवल छोटे दिल वाले ही सोचते हैं । उदार दिल वालों के लिए तो सारी पृथ्वी ही एक परिवार की तरह है।' की रही है। आम जन जीवन में साम्प्रदायिकता किसी त्रासदी से कम नही है। त्रासदी ऐसी कि, जो जन्मों जन्मांतर तक मनुष्य के उपर ऐसी छाप छोड़ जाती है, जिससे बाहर निकलना मुत्यु के पश्चात् ही संभव हो पाता है। मनुष्य का धर्म से लगाव ही उसे विवेकशून्य होकर अन्धविश्वासी बनाता है। जो एक आम जन जीवन में त्रासदी का कारण बनता है। समय समय पर हुई साम्प्रदायिकता के वीभत्स रूप ने हिंदी के साहित्यकारों को भी हिला कर रखा है। जिसका यथार्थ चित्रण करने में साहित्यकारों ने कोई परहेज नहीं किया।

प्रमुख शब्द: समाज,जातिवाद, मजहब, राजनीति, साम्प्रदायिकता, अराजकतावादी, आदि

प्रस्तावना

उपन्यासकार शिवमूर्ति ने अपने उपन्यास 'त्रिशूल' में सांप्रदायिकता और जातिवाद से लिप्त समाज को यथार्थपरक चित्रण किया है। अपने इस उपन्यास में शिवमूर्ति ने समाज में गहराई तक धंसे विचारों, मानवीय व्यवहारों, एवं धारणाओं को प्रश्नांकित करते हुए भारतीय वर्ण व्यवस्था वाले हिन्दू समाज की जातिवादिता, धार्मिकता और सामंती मानसिकता को तार-तार कर दिया है। उपन्यास की शुरुआत में ही लेखक 'महमूद' को केंद्र में रखते उसकी उसकी मानसिक स्थिति का वर्णन करता है। जो पाठकों को सोचने के लिए मजबूर कर देती है। एक ओर रक्षक कही जाने वाली पुलिस का महमूद को घसीटकर ले जाना या फिर दूसरी तरफ कुछ अराजकतावादियों द्वारा उसकी छाती पर त्रिशूल अड़ाकर उसे गाली देते हुए जबरदस्ती "जय सिरी राम" बुलवाना आदि, और मुहल्ले के सभी लोगों द्वारा मात्र मूक दर्शक बनकर उसको देखते रहना।[1] महमूद जो किसी के लिए भाईजान तो कुछ उसे चेलवा कहकर पुकारते है वो कब एक मुस्लिम बन जाता है इसका अंदाजा उसने भी कभी नहीं लगाया होगा। इस उपन्यास के एक और मुख्य पात्र मुखोटा पहने धार्मिक प्रवृति के व्यक्ति शास्त्री जी जिनके लिए इंसान सिर्फ हिन्दू जाति का स्वर्ण होना ही महत्व रखता है। इसके अतिरिक्त अन्य धर्म और जाति के इंसान उनके लिए उनके दुश्मन है। शुरू शुरू में वह बहुत ही सीधे धार्मिक प्रवृति के सुलझे हुए आदमी लगते है। लेकिन धीरे धीरे पाल साहब भी उन्हें समझने लगते है। एक दिन शास्त्री जी द्वारा पाल जी 'आस्तिक है या नास्तिक' जानने की इच्छा जाहिर करना। उनके इस सवाल पर पाल साहब हाथ जोड़ते हुए - "शास्त्री जी आप मुझे बहुत प्रिय है कहते है,तर्क दूरी पैदा करता है। अनास्था लाता है। मैं किसी वाद-विवाद, मत-मतांतर में आपको खोना नहीं चाहता। इसलिए इस तरह के प्रश्न में उलझना नहीं चाहता। पाल जी द्वारा शास्त्री जी को इस तरह का जवाब देना इस बात की ओर इंगित करता है कि वह शास्त्री जी के मुखोटे के पीछे के चेहरे से अब धीरे-धीरे परिचित होने लगे थे। पाल साहब कहते है कि "मैं यह तो मानता हूँ कि ब्रह्मांड का नियामक कोई सत्ता हैं। किन्तु यह नहीं मानता कि यह नियामक अयोध्या के राजा रामचन्द्र जी माहराज हैं या थे। ईश्वर केवल हिन्दुओं के ईश्वर नहीं है। वह सभी धर्मावलम्बियों का है। विभिन्न धर्मों के उद्भव से पूर्व था। और उनके न रहने पर भी होगा। यहाँ काले का ईश्वर गोर से अलग है। गाय-बैल का ईश्वर शेर-बाघ के इश्वर से भिन्न होगा। जलचरों का नभचरों से। विभिन्न न्यायलयों में श्री रामचंद्र सिंह वल्द दशरथ सिंह बनाम स्टेट या श्री हनुमानजी वल्द नामालूम बनाम नगर महापालिका के मुकदमे चलते रहते है। [2]

एक और पाल साहब जैसे साम्प्रदायिक सद्भाव और भाईचारे की भावना को विकसित करने वाले व्यक्ति आज भी हमारे समाज में मिल जायेंगे जो धर्म को व्यक्तिगत आस्था का प्रश्न मानते हैं उनके लिए महमूद न तो नौकर है और न ही कट्टरवादी मुसलमान। महमूद तो वस्तुत: इन बातों से परिचित भी नहीं है। और इसी वजह से वे महमूद को अपने परिवार का एक सदस्य मानते हुए अपने साथ रखते हैं। कई वर्षों से हिन्दू और मुसलमान इस देश में सदियों से जिस भाईचारे के साथ रहते आये हैं और खुद पाल साहब जिस तरह से सम्प्रदाय निरपेक्ष सम्बन्धों का निर्वाह करते आये हैं, वे खुद नहीं सोच पाते हैं कि महमूद का मुसलमान होना ही हिन्दू सम्प्रदायवादियों के लिए सब से बड़ा अपराध है। शास्त्रीजी जैसे लोग हिन्दू साम्प्रदायिकता का झण्डा लेकर चलते हैं। पाल साहब से पहली मुलाकात में वे कहते हैं- 'गाय पाल कर आप सच्चे हिन्दू धर्म निबाह रहे हैं। गो ब्राम्हण की सेवा। आप को देखकर ही लगता है कि आप आस्थावान व्यक्ति हैं। और जीवन का मूल है आस्था।'[3]

वहीँ दूसरी और शास्त्री जी जैसे व्यक्ति जो इंसान की पहचान धर्म और जाति

से करते है। जैसे ही उन्हें पता चलता है कि उनका वो चेलवा जो कल तक उनके घर के तमाम जरूरी कार्य करता था। उसके हाथ की चाय पीने या प्रसाद के लड्डू घर-घर पहुंचाने से शास्त्रीजी तथा अन्य हिन्दूवादियों का धर्म नष्ट नहीं होता था। वो मुसलमान है। वह तब से ही उनके लिए एक कट्टर दुश्मन बन जाता है। जहाँ धर्म हम सबको जीने की आयते सिखाता हैं वहीँ दूसरी और धर्म महमूद के लिए एक मुसीबत बनकर खड़ा हो जाता है। शास्त्री जी महमूद की गैर मौजूदगी में पाल साहब के सामने ज़हर उगलते हुए कहते है।

"सुना है आपके घर में काम करनेवाला लड़का मुसलमान है?"

"हाँ है तो।"

"क्यों? आपको कोई हिंदू नहीं मिला?"

"दरअसल इस नजरिए से तो कभी सोचा नहीं। एक लड़का चाहिए था। जो मिल गया, रख लिया।"

"लेकिन गैर जानकारी में ही सही, आपने अपनी आस्तीन में साँप पाल रखा है जो कभी भी आपको, आपके परिवार को डस सकता है। आप बाल बच्चेदार आदमी हैं। आपके घर में सयानी होती लडकियाँ हैं। वह बच्चा नहीं, बीस साल का 'मुसल्ला'है।

"शास्त्री जी वह घर का बच्चे जैसा ही है, और बचपन से है। उसमें कोई ऐसा एब नहीं है। आप तो खुद उसकी तारीफ करते है।"

"करता हूँ, नहीं करता था। गैर जानकारी में। "[4]

उनके द्वारा इंसानियत को धर्म से जोड़ने वाला शब्द और और एक दिल साफ़ बच्चे के चरित्र पर ऊँगली उठाना ही उनकी गिरी हुई मानसिकता को बयाँ करने के लिए काफी था। महमूद के धर्म से परिचित होने के पश्चात शास्त्री जी को दुनिया के सारे गुनाह उस मासूम में ही दिखाई देने लगते हैं। महमूद के खिलाफ अपने पोते के अपहरण की फर्जी रिपोर्ट तक वे करते हैं। और महमूद को हिन्दू साम्प्रदायिकता का शिकार होकर पुलिस के जुल्म सहने पड़ते है। इसके अतिरिक्त शास्त्रीजी साम्प्रदायिकता का जहर फैलाने के लिए तरह-तरह के विधान रचते हैं। राम मंदिर के निर्माण के लिए चन्दा इकट्ठा करना, राम भक्तों को अयोध्या भेजना, अस्थि कलशों का आयोजन, मुसलमानों की सम्पत्ति पर कब्जा और उत्तेजक नारे और भाषणों के कैसेट समाज के वातावरण को जहरीला बनाते हैं।

शिवमूर्ति ने अपने उपन्यास में जिस तरह बेझिझक राजनीति के गिरते स्तर का चित्रण किया है वो वाकई में काबिले तारीफ़ है। मंत्री जी ने अपने हार की डर से पोलिंग से एक हफ्ते पूर्व अपने प्रतिद्वंदी नेता को अगवाह करवा लिया। जिसके पश्चात् विपक्षी पार्टी के कार्यकर्ताओं द्वारा कुछ हल्ला-गुल्ला मचाया गया। लेकिन वर्षों पुरानी कहावत 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' मंत्री जी का बाल बांका भी नही हुआ। क्यूँकि प्रशासन मंत्री जी की मुट्ठी में ही था। कुछ लोगों को पोलिंग समाप्त होने के बाद छोड़ दिया गया बाकि तीन कार्यकर्ताओं का पता भी नही चला और यह लोग वो थे जो भविष्य में मंत्री जी के लिए चुनौती बन सकते थे। अत: चुनाव में मंत्री जी की जीत हुई और वह एक बार पुनः मंत्री बन गए। और गायब हुए तीन नौजवानों की सड़ी-गली लाशें नदी से बरामद हुई। इन सभी घटनाओं के बाद मंत्री जो को बरी कर दिया गया और सारा दोष उनके कार्यकर्ताओं के खिलाफ दर्ज कर दिया गया।

'त्रिशूल' का एक और सजीव पात्र बाबा पागलदास, लोकगायक पाले। पाले भी मंत्री जी के खिलाफ दर्ज हुए मुकदमे का एक गवाह था जिसने जेल से छूटने के बाद इस घटना पर एक गीत रचा-

गुलाब गंध से गंधाता है जिला मेरा

शुरू होता है भंडा फोड़ सिलसिला मेरा[5]

इस गीत में 'पाले' ने चुनाव में हुई धाँधली और गुलाब सिंह की ज्यादतियों तथा भ्रष्टचार का भंडाफोड़ किया था। बाबा पागलदास इसी तरह जगह जगह जाकर धर्म के ठेकेदारों के खिलाफ जमकर भाषण देते हुए कहता है। "धर्म का रोज़गार नई बात नही है। इस रोज़गार में मुनाफा बढाने के लिए जमकर मिलावट की गयी है।" धर्म माने ड्यूटी । कर्तव्य! हमारे धर्म में मिलावट की गयी। वह जहरीला हो गया है।6

"हमारी आबादी नब्बे करोड़ और हमारे देवता बानवे करोड़ एक-एक आदमी के कंधे पर एक-एक मुफ्तखोरी सवारी गाँठे है। देवता कौन? मुफ्तखोर! कमाते है हम। भोग लगाता है वह।"[7]

पाले राम-भक्तों को मारीच की सन्तान कहकर पुकारता था। "मारीच ने भी तो राम का नाम लिया था। पर क्या वह राम भक्त था? उसने तो राम का नाम लेकर खुद राम को ठग लिया था। ऐसे ही 'ठगहार' है ये राम भक्त।" कहता था ऐसे राम राज्य से भगवान बचाए जिससे ब्रहामण के फलने फूलने के लिए शुद्र का सर काटा जाना अनिवार्य होता है।"[8] कथाकार ने अपने इस उपन्यास में 'पाले' के माध्यम से ओछी राजनीति करने वाले नेताओं, भारतीय समाज में पनप रही जातिवाद की समस्याओं और धर्म के नाम पर चल रही दुकानों तथा उनके ठेकेदारों आदि जैसी साम्प्रदायिकता फैलाने वाली बिमारी का चित्रण इतने सुंदर तरीके से किया है कि, वो हर एक पाठक और समाज के हरेक नागरिक को सोचने के लिए विवश कर देती है। लेखक ने अपने इस उपन्यास में वर्तमान में घटित हुई घटनाओं के सजीव चित्रण करने के साथ साथ भविष्य को भी उकेरा है।

उपन्यास का अंत होते होते धर्म के ठेकेदार शास्त्रीजी घर के बाहर उनके चेले 'पाले' की हत्या का जश्न में जलसा निकालते है! एक आदमी की मृत्यु पर इस तरह का जश्न इंसानों की गिरती हुई इंसानियत के साथ साथ यह सिद्ध करने के लिए काफी है कि लोग कैसे मजहब और जातिवाद के नाम पर अपनी ही नस्ल को खत्म करने में तुले हुआ है। ये सब दृश्य देखकर शास्त्री जी के पडोसी पाल साहब के मन में उन सके प्रति एक कडवाहट सी भर जाती है।

वहीँ दूसरी ओर पाल साहब और उनके घर का हर एक सदस्य एक गैर मजहबी (महमूद) की तलाश में रातों की नींद खोये हुए उसके आने की आश लगाये बैठे है। उनके गले से अन्न का एक निवाला भी नीचे नहीं उतर पा रहा है। हर वक्त भगवान से सिर्फ उस मासूम की हिफाजत की दुआ मांगते है। और इस सबके लिए स्वयं को दोष देते है। महमूद की सलामती के लिए पाल साहब अपनी जान को जोखिम में डाल कर वह नदी पार मुस्लिम बहुल क्षेत्र में भी चले जाते है और किसी तरह डरे सहमे पीट पिटाकर वहाँ से उसे अपने साथ ले आते है। पाल साहब के माध्यम से कथाकार ने यह जताने का प्रयास किया है कि दुनिया में अभी भी पाल साहब जैसे आदमी की वजह से इंसानियत जीवित है जिनके लिए धर्म से बढ़कर इंसान मायने रखता है।

उपन्यास के अंत में वो महमूद जिसको पाल साहब ने हमेशा अपने परिवार के एक सदस्य की तरह समझा अपने खुद के बच्चों और उसमें किसी तरह का भेदभाव नही रखा। उसके साथ हुए इन सभी हादसों के पश्चात् उसके द्वारा अपने घर जाने का निर्णय लेना आँखों में एक पानी की धार ले आता है। अपना बैग साइकिल में टांगते हुए "हमारी गलतियों को माफ़ कर देना मम्मी।" पत्नी स्वयं भी उसके आँसू पोछते हुए फफक पड़ती है। [9]

महमूद द्वारा समान लेने से मना करना लेकिन पाल साहब की पत्नी द्वारा जोर देते हुए उसे वो सब समान देना, जो वो पहले लेना चाहता था।

'पत्नी उसे टेप रिकॉर्डर दे रही हैं। फ्राक दे रही हैं। सायकिल दे रही हैं।

वह लेता नहीं। कहता है, "क्या होगा?"

पत्नी जोर देती हैं, "रख लो, रख लो।"

वह कहता है, "रहने दीजिए। जाने दीजिए।"

पत्नी ने उसका हिसाब किया है। गिनकर कुछ रुपए दिए हैं। वह बिना उन्हें देखे, पैंट की जेब में डाल लेता है।

मैं कुछ बोलने के लिए पूछता हूँ, "बस कितने बजे हैं?"
उत्तर पत्नी देती हैं, "रात दस बजे। सवेरे सीधे इसके दरवाजे पर उतारेगी।"
मैं महमूद से कहता हूँ, "स्कूटर निकालो। बस अड्डे तक छोड़ आऊँगा।"
फिर पत्नी ही बोतली हैं, "इसका दोस्त नाई का लड़का आया है, अपने एक साथी के साथ। वही दोनों छोड़ने जा रहे हैं।"
"कहाँ हैं?"
"महमूद की कोठरी में बैठे हैं।"
मैं रोमांचित हो जाता हूँ। क्या सचमुच निहायत गाढ़े दिनो में अपने ही काम आते हैं? अपना कौन है? पराया कौन? आज तक हम इसके 'अपने' थे। आज पराए हो रहे हैं। वे लड़के कल तक 'पराए' थे। आज जाते-जाते सगे हो गए है।[10]

महमूद का पाल साहब और उनके परिवार को छोड़ कर जाना उन्हें सोचने में मजबूर कर देता है की "लगता है महमूद के साथ हमारी युगों-युगों से संचित सहिष्णुता, उदारता और विश्वबंधुत्व की पूँजी आज इस घर को हमेशा-हमेशा के लिए अलविदा करके जा रही हैं।"[11]

उसके जाने के तीन दिन पश्चात् उसके अब्बा का खत पाल साहब को मिलने पर उन्हें फिर से सोचने में मजबूर कर देता है कि, जहाँ एक ओर मुसीबत से बचने और अमन की ज़िन्दगी जीने के लिए महमूद ने अपना रूख अपने घर की और मोड़ा था। वो समस्या भी दूम हिलाती उसके पीछे पीछे चल पड़ी। महमूद के जाने के तीन दिन बाद मिले महमूद के अब्बा के खत से पता चला कि वे लोग जान बचाने के लिए लखनऊ भाग आए हैं और अभी कोई पक्का 'ठीहा' नहीं मिला है। सवेरे अपने घर के जिस 'दरवाजे' पर उतरा होगा महमूद उस घर का उजड़ा चेहरा देखकर क्या बीती होगी महमूद पर!

निष्कर्ष

त्रिशूल समाज की उस मनोदशा का जीता जागता चित्रण पेश करता है। जहाँ साम्प्रदायिकता और जातिवाद वर्षों से अपने पैर जमाए बैठा है। और राजनीति की आड़ में गश्त लगाये नेता धर्म और जाति के आधार पर राजनीति रोटियां सेंक रहे है। जहाँ आदमी के व्यक्तित्व की पहचान उसके व्यवहारों से कम उसके धर्म और जात से की जाती है। धर्म, जाति और सम्प्रदाय के ठेकेदार इंसानियत की खाई को लगातार बढाने का काम कर रहें है।

शिवमूर्ति के त्रिशूल उपन्यास के महमूद की सहजता प्रेमचंद के हामिद की याद दिलाती है। लेकिन हामिद और महमूद में एक भारी अंतर है। यह अंतर बहुत ही उदास कर देनेवाला अंतर है। अंतर यह कि आजादी की ओर बढ़ते हुए गुलाम भारत के हामिद में जो उत्साह और सूझ का साहस था वह गुलामी की ओर बढ़ते आजाद भारत के महमूद में नहीं है। हो भी कैसे सकता है हामिद का समय सहिष्णुता, उदारता और विश्वबंधुत्व के आगमन के स्वप्न का समय था और महमूद का समय सहिष्णुता, उदारता और विश्वबंधुत्व के विघटन के यथार्थ का दुस्समय है![12]

शिवमूर्ति का 'त्रिशूल' उपन्यास की सफलता और सार्थकता इस बात में भी है कि वह मुसिलम दलित पिछड़ों के माध्यम से प्रतिरोध और विद्रोह का परिप्रेक्ष्य निर्मित कर जनजागृति का सृजनामकता कार्य करता है। इनकी यही जागृति, यही चेतना समानता, मानवीय अधिकारों और मूल्यों के लिए प्रतिरोध का परिप्रेक्ष्य निर्मित करती है। जिसे 'त्रिशूल' की घटनाओं और पात्रों के माध्यम से देखा जा सकता है। जहाँ एक ओर समाज में चेहरे में मुखोटा पहने धर्म के ठेकेदार शास्त्री जी जैसे लोग मौजूद है। वहीँ दूसरी ओर पाल साहब जैसे लोग भी हमारे समाज में देखने को मिल जाते है। जिनकी बदोलत आज भी इंसानियत के कुछ अंश बचे हुए है। जो अपनी जान की परवाह किये बिना, बिना सोचे समझे सिर्फ इन्सान को सलामत रखना ही अपने मुख्य धर्म मानते है। त्रिशूल भारतीय साहित्य और समाज का ऐसा 'टेक्स्ट' है जिसमें वर्ण जाति, धर्म समप्रदाय राजनीति, अर्थनीति और संस्कृति की भेद-मूलक संरचनाएं आपस में इस तरह गुंथी हुई हैं कि भारतीय लोकतंत्र भी उन्हीं के सहारे 'सरवाइव' कर रहा है, 'भेद' को बनाए रखकर। लेकिन जब तक भेद रहेगा तब तक अन्याय भी रहेगा।[13]

संदर्भ

1. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पेज 5
2. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018,पेज 9
3. http://www.shivmurti.com/
4. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पेज 31
5. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पेज 48
6. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पेज 52
7. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पेज 53
8. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पेज 85
9. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पेज 103
10. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पेज 102.
11. शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पेज 104.
12. http://prafullakolkhyan.blogspot.com/2014/01/blog post_8126.html
13. दुर्गाप्रसाद गुप्त - लमही, अक्टूबर-दिसम्बर 2012 पृष्ठ 224-125.